पूर्ण हो जाती है—उसकी आशाएं सफल हो जाती हैं—फिर उसे दूसरेकी कुछ परवा नहीं रहती। हजारों लाखोंमें किसी एक महात्माकी बात जाने दीजिये, जिसकी कि प्रत्युपकार बुद्धि होती है। हमें तो सर्व साधारणके भावोंकी जांच करनी है कि उनकी बुद्धि कितनी स्वार्थ-मय होती है।

हमारा स्वभाव बहुत कुछ स्वार्थप्रिय और विस्मरण शील है। हम अपनेपर उपकार करनेवालेका उपकार बहुत जल्दी भूल जाते हैं। जबतक हमपर कोई आपत्ति अथवा दुःख रहता है, तबतक ही हम यह समझते हैं कि यह हमारा बहुत कुछ उपकार कर रहा है और जहां हम दुःखसे निर्मुक्त हुये कि फिर हमें यह कभी ध्यान भी नहीं आता कि जिसने हमपर उपकार किया है, उसके प्रति हमारा क्या कर्त्तव्य है? यही कारण है जो हम अच्छी हालतमें किसीपर दया नहीं करते। सच तो है, जो अपने-पर उपकार करनेवालेका—अपने जीवनकी भिक्षा देनेवालेका ही—जब नहीं हुआ—उसके काम न आया—तब वह बेचारे दीन, दुखी, अनाथ, और अपाहिजोंका कैसे हो सकता है—कैसे उनके दुःख-में अपनी सहानुभूति बतला सकता है?

हम सिवा इसके कि हमारी स्वार्थसाधनाका विघात न हो, कभी किसीके सुख दुःखमें भाग नहीं लेते। हाँ अपने स्वार्थके लिये वक्तपर हमें तकलीफ भी उठानी पड़े तो उठाते हैं। मृत्युतकका भी यदि सामना करना पड़े तो हम करते हैं। परन्तु यह सब तबहीतक जबतक कि अपना स्वार्थ सधता है। और जहाँ स्वार्थ नहीं, वहां फिर कोई कितना ही घोर दुःखमें क्यों न हो? हमारी थोड़ी भी सहायता-

से उसकी आशातीत भलाई क्यों न होती हो ? परन्तु हम कभी उसके काम नहीं आवेंगे। उससे बचनेके लिये चाहे हमें एक नई आपत्ति क्यो न उठानी पड़े, उसे हम उठालेंगे परन्तु हमसे यह आशा कभी नहीं की जा सकती कि हम दयापात्रपर दया करेंगे, दुःखके मारे हुयेके साथ सहानुभूति प्रकाशित करेंगे—उसे सहारा देंगे—यह तब ही संभव हो सकता है जब हमारा हृदय दयालु हो, सो दयाका तो उसमें नाम निशानतक नहीं। वह यहाँतक संकीर्णता और निर्दयताका स्थान बन गया है कि हमारा खास भाई भी यदि हमारी आंखोंके सामने दुःख पा रहा हो तब भी उसपर हमें करुणा न आयगी—हमारा हृदय उसके दुःखसे नहीं पसीजेगा। फिर दूसरे लोगोंकी बाबत तो हम क्या कहें, उन बेचारोंकी क्यों कोई बात पूछेगा ? भारत ! देख, तेरी सन्तानका हृदय कितना कठोर हो गया है ? क्या यह पहले भी ऐसी ही थी ?

हम अपने मतलबके लिये अनर्थ करते हैं, अन्याय करते हैं, और दूसरोंका बुरा करते हैं। हममें कभी किसीके भले करनेकी वासना नहीं होती। हमारा हृदय यहांतक कलुषित हो रहा है कि यदि किसीका किसीके द्वारा भला होता हो और उसका हाल हमें ज्ञात हो गया हो तो हम प्राणपणसे उसके अनिष्ट होनेकी कोशिश करेंगे। थोड़ेमें यों कह लीजिये कि संसारमें ऐसा कोई अनर्थ या बुरा काम नहीं है, जो स्वार्थी पुरुषके द्वारा न किया जा सके।

स्वार्थप्रेमके—स्वार्थवासनाके—सभी दास हैं। इससे कोई अछूता नहीं बचा है। राजे और महाराजे, निर्धन और धनी; विद्वान और मूर्ख, समझदार और ना समझ इन सबमें स्वार्थ किसी न किसी

रूपमें अवश्य हैं । परन्तु हाँ इतना फर्क जरूर होता है कि कितनोंका स्वार्थ तो दूसरेकी हानि न करके अपना ही भला करता है और कितनोंका बहुत ही घृणित होता है । वह दूसरेकी हानि लाभका कुछ विचार न कर हर एक उपायोंद्वारा अपने भले होनेकी कोशिश करता है । इस लिये भारविका यह कहना कि **सर्वः स्वार्थं समीहते** युक्तिशून्य नहीं है ।

एक तपस्वी है । वह बहुत ही कायक्लेश और तपश्चर्या करता है। उसका यह अनुष्ठान भी स्वार्थसे खाली नहीं कहा जा सकता । क्योंकि यदि उसे तपश्चर्या और कायक्लेशके द्वारा किसी प्रका- रकी आशा न होती—उससे वह अपना भला होना न समझता—तो कभी ऐसे कठिन काममें वह अपना हाथ नहीं डालता । इस लिये यदि हम संसारके सब कामोंको स्वार्थमय कहें तो कुछ अनु- चित नहीं । जो लोग कुछ भी काम करते हैं वे किसी न किसी स्वा- र्थके वश होकर ही करते हैं ।

यहांपर इस प्रश्नको स्थान मिल सकता है कि जब संसारके सभी काम स्वार्थसे खाली नहीं है तब जो केवल देश या जातिके उप कारार्थ काम करते हैं—उनके लिये अपना जीवन देते हैं—क्या वे भी स्वार्थी हैं ? और हैं तो बतलाना चाहिये कि उनमें क्या स्वार्थ है ?

इस प्रश्नका हल करना कठिन नहीं तो विचारणीय अवश्य है । सूक्ष्मदृष्टिसे इस पश्नके ऊपर ध्यान देकर यदि इसका उत्तर दिया जा- य तो कहा जा सकता है कि हाँ उनका काम भी स्वार्थसे खाली नहीं है। विचारकरनेसे जान पड़ेगा कि अभी उन लोगोंका हृदय भी पूर्ण उदार नहीं हुआ है। यही कारण है—जो वे अपने ही देशको, अपनी ही जातिको

उन्नत अवस्थामें देखना चाहते हैं। यदि उनमें पूर्ण उदारता होती तो वे सारे संसारकी उन्नति चाहते—उनमें हमारा यह अहंभाव न होता। यही अहंभाव हमारे उक्त विचारको परिपुष्ट करता है। अस्तु। यह स्वार्थ है। भले ही हो। हमें इससे कुछ हानि नहीं और न हमारा लक्ष्यही इसपर है।

स्वार्थ शब्दकी—व्याख्यासे हमारा आशय हृदयकी मलिन—वासनासे है। जिनका हृदय स्वार्थकी मलिन—वासनासे दुर्गन्धित होकर अपने देशका, अपनी जातिका अनिष्ट करता है—उन्हें रसातलमें मिलाता है—उसे ही हम स्वार्थ कहते हैं और यही स्वार्थ हमारे इस लेखका लक्ष्य है। इस लिये हम उन परोपकारियोंके उस स्वार्थको स्वार्थ नहीं कहते। अपने देश, अपनी जातिके उपकारार्थ जो महात्मा—जो निष्कामयोगी—काम करते हैं—उसके लिये अपना जीवन उत्सर्ग करते हैं—हम कह सकते हैं कि यह उनके शुद्ध हृदयकी पवित्र भावनाका काम है। उससे उनका कोई खास मतलब नहीं है। वे जितना कुछ काम करते हैं वह केवल दूसरोंका भला होनेके लिये। इसी लिये वे देशके आराध्य कह जाते हैं—उन्हें सब प्रेमभरी पवित्र दृष्टिसे देखते हैं।

ऐसे ही महात्माओंकी अब भी हमे आवश्यकता है। उनके बिना देशके उन्नत होनेकी आशा नहीं की जा सकती। भारत पहले ऐसे निष्कामयोगियोंका केन्द्र रह चुका है। उन्हींकी कृपाका-परोपकार बुद्धिका—यह फल है जो आज भी भारतमें चेतनताकी झलक दिखाई पड़ती है। परन्तु अब यदि केवल झलकमात्रके भरोसे रह कर कुछ उपाय न करेंगे—अपने पवित्र देशके अभ्यु-

स्थानका रास्ता न शोध निकालेंगे—तो इस टिम टिमाती झलकके निर्वाण होनेमें कुछ विलम्ब न लगेगा। अब इस मन्द ज्योतिके लिये कुछ सहारेकी जरूरत है—उसे पुनः रोशन करनेकी बड़ी भारी आवश्यकता है।

हमने अपने हृदयको स्वार्थके प्रेममें खूब ही अनुरक्त कर दिया। अपने और परायेके कर्तव्यज्ञानसे उसे सरस न होने दिया। इसी लिये आज हमारा पवित्र देश अज्ञानके अपार पारावारमें निमग्न हो रहा है। स्वार्थके प्रभावने हमे यहाँतक अपने वश कर लिया है कि हमारे प्रेमपात्र भाई बन्धु हमारा मुख बड़ी आशासे देखते हैं और हम उनकी ओर आँख उठाकर भी नहीं देखते। वे हमे चाहते हैं पर हम उन्हें नीची दृष्टिसे देखकर उनसे घृणा करते हैं।

आज देशमें बहुतसे लोग दुखी हैं। उनमें कितने भीख माँगते हैं, कितने अशिक्षित होनेसे कुछ उद्योग करना नहीं जानते, कितनोंके जीवन निर्वाहका कुछ ठिकाना नहीं, कितने एक वक्त जो कुछ रूखा सूखा मिल जाता है उसे ही पेटमें डाल कर रह जाते हैं, कितनोंको एक वक्त भी पूरा खानेको नसीब नहीं होता, कितने लूले हैं, कितने लँगड़े हैं, कितने अनाथ हैं, कितने दीन हैं और कितने बेचारे गलियों गलियोंमें कुत्तेकी मौत मर रहे हैं। परन्तु खेद होता है कि अपने देशके दुखियोंकी इस प्रकार भयानक परिस्थिति देखकर भी हमारे पत्थर सरीखे कठोर हृदयमें करुणाका सञ्चार नहीं होता। हम उनके लिये कुछ भी ऐसा उपाय नहीं करते जिससे उनके दुःखमय जीवनका अन्त हो। भारत अभी भी इतना दरिद्र नहीं हो गया है

जो अपने इन दीन अनाथोंकी परवरिश न कर सके। परन्तु न जाने क्यों फिर हमारे हृदयमें ऐसी पवित्र बुद्धिका जन्म नहीं होता? हम कहेंगे कि इसका कारण केवल हमारा पुराना स्वार्थप्रेम है—उससे हमारा हृदय पवित्र नहीं है—इसी लिये ऐसी पवित्र भावनाको हमारे हृदयमें स्थान नहीं मिलता। परन्तु अब जमाना किसी ओर ही रास्तेपर जा रहा है। ऐसे समयमें हमें उठना चाहिये और अपने देश तथा जातिको सहारा देना चाहिये। अब हमारे लिये काम करने का समय है। हमे फिर भी एक वक्त अपने देशको संसारका आदर्श बना देना चाहिये।

भारतकी वीर सन्तान! उठो और ज्ञानके द्वारा प्रकाशित संसारमें तुम भी कुछ अपने भाइयोंके लिये कर चलो। अब तो तुम्हें अपनी उन्नतिके लिये साधन भी बहुत प्राप्त हो सकेंगे। देखो, तुम्हारे पूर्वजोंने उस समय तुम्हारे देशकी उन्नति की थी जब कि उनके पास अब सरीखे कुछ भी साधन न थे। और अब तो तुम्हारे लिये सब कुछ मौजद है। फिर भी यदि तुम अपने देशकी भलाईके लिये प्रयत्न न करो तो सचमुच यही कहना पड़ेगा कि देशमें तुम सरीखे अकर्मण्य पुरुषोंकी कुछ आवश्यक्ता नहीं है। वह मनुष्य किस कामका जिसने अपनी जाति और अपने देशके सुधारके लिये—उनकी उन्नति करनेके लिये—अपने जीवनका कुछ भी भाग समर्पित नहीं किया। अस्तु। अब भी कुछ नहीं बिगड़ा है। अभी भी बहुत कुछ उन्नति की जा सकती है। इसलिये गई सो गई अब राख रहीको इस लोकोक्तिके ऊपर ध्यान देकर अपने पतित देशको सहारा दो।

देखो, तुम्हारे दुखी भाई आँखोंमें आंसू लाकर तुम्हारी ओर एक टका टकी लगाये हुये हैं और चाहते हैं—तुमसे आशा करते हैं कि—तुम

उनका दुःख दूर करो—उनपर दया करो—और उन्हें अपने हाथका सहारा दो। इस समय यही तुम्हारा प्रधान कर्त्तव्य है।

देखो! एक विद्वान क्या कहता है—

स जातो येन जातेन याति देशः समुन्नतिम्।

हमारा कौन?

इस पृथ्वीपर हमारा कौन है? मनुष्यके समान हाथ पैरके होने-पर भी ऐसा कौन है जो मनुष्य कहलानेका पात्र नहीं है? कामदेवकी तरह सौन्दर्यशाली होकर भी कौन निकृष्ट और अस्पृश्य है? विद्यामें सरस्वती और बुद्धिमें बृहस्पति होकर भी जनसमाजमें अनादरका पात्र कौन है? प्रचुर सम्पत्तिका स्वामी होकर भी कौन समाजका कण्टक है? और राज्य सम्मानित होकर भी सर्व साधारणके अश्रद्धाका पात्र कौन है?

जो इस विशाल पृथ्वीमण्डलपर जन्म लेकर परम सुन्दर विनय-गुणसे अपनेको अलंकृत नहीं करता है—अपनेको विनयका पात्र नहीं बनाता है, जो अधिकारके अभिमानमें आकर अपनेसे नीचेके अधिकारियोंके साथ उचित व्यवहार न करके उन्हें पशुओंकी तरह समझता है, जो उनके साथ आलाप संभाषण करनेसे अपना अपमान समझता है, जो अपने मालिककी चापलूसीके सिवा कभी मधुर वचन बोलना नहीं जानता है, जिसमें विनय और शिष्टाचारकी गन्ध भी नहीं है, जो केवल अपने बड़े होनेकी इच्छा-से बुगलेकी तरह सीधा साधा बना रहता है, जो अपनी स्वार्थसिद्धिके लिये भी नाना प्रकारकी चापलूसी द्वारा ऊँचे ऊँचे अधिकारियोंके

मनकी तुष्टि नहीं कर सकता है, जो अन्धे, लूले, लँगड़े, बूढे-दीन, अनाथोंकी विनय प्रार्थनापर ध्यान न देकर उनकी ओर आंख उठा कर भी नहीं देखता है—किन्तु वेश्याओंके घरपर जाकर खुले हाथ धन स्वाहा करता है, दूसरोंके दुःख देख कर जिसका कठोर हृदय आर्द्र नहीं होता है, अनाथ, दीन, हीन और निराश्रय बालक बालिकाओंका रूखा, जीर्ण, शीर्ण और वस्त्ररहित शरीर देख कर जिसकी आँखोंसे एक बूँद आँसूकी नहीं गिरती है, जो प्रेमकी साक्षात् मूर्तिमती करुणादेवीकी मन सहित भक्ति नहीं करता है, जो इस लोकमें भक्ति भाजन माता पिताकी सेवा सुश्रूषा उचित रीतिसे नहीं करता है और उनके लिये निर्भय होकर प्राण विसर्जन नहीं करता है, जो पतिप्राणा सरला सहधर्मिणीके पवित्र प्रेमको जलाञ्जलि देकर पशुओंकी तरह केवल आनन्दके लिये वेश्याओंके द्वार द्वारपर ठोकरें खाता फिरता है, जो पति पुत्र रहित स्त्री, और माता पिता रहित अनाथ बालक बालिका अथवा और किसी सरलहृदय भले आदमीको धोखा देकर उनका सर्वस्व हरण करनेके लिये अपना मायाजाल फैलाता है, जो सामान्य धन कमानेके लिये अपने अपूर्व मनुष्यजीवनको अन्यायके गड्ढेमें गिरा देता है, जो परलोकके लिये सुखमय धर्मको जलाञ्जलि देकर पाप पंङ्कमें लिप्त होजाता है और जो परम् दयालु परमात्मामें अविश्वास कर निरर्गलतासे पापकर्म करने लगता है वह कितना ही वड़ा क्यों न हो, कितना ही विद्वान् और बुद्धिमान् क्यों न हो, कितना ही अभिमानी और धनी क्यों न हो, कितना ही गुणवान् और सुन्दर क्यों न हो ? किसी कामका नहीं—संसर्ग करनेका पात्र नहीं—किन्तु प्रत्युत

घृणाका पात्र है । उसके समान संसारमें कोई असार वस्तु नहीं है । उसका धन, रूप, ऐश्वर्य, गुण और सौन्दर्य उसीके पास रहें उनसे जनसमाजको कुछ लाभ नहीं पहुँच सकता । वह मनुष्य मनुष्यसमाजमें गिनने लायक नहीं है । मनुष्यसमाजमें उसीकी गिनती हो सकती है जो उसके योग्य काम करता है और वही हमारा प्रेमपात्र है । *

मैंने विवाह क्यों किया ?

मैंने विवाह क्यों किया ? इससे लोगोंका कुछ सम्बन्ध नहीं है । क्योंकि यह एक मेरी प्राईवेट बात है और प्राईवेट बातका प्रगट करना उचित नहीं । यद्यपि विवाहकी बात प्राईवेट है और वह प्रगट करने लायक नहीं है । परन्तु फिर भी विवाह करनेक कारणोंके कहनेकी एक पुरानी पद्धति चली आती है । इस लिये मुझे भी उसका अनुसरण करना चाहिये । यही विचार कर मैं अपने विवाहके कारणोंको बताऊँगा ।

मेरे दादाजी साहबने जब दूसरा विवाह किया तब वे कहने लगे कि क्या किया जाय ? एक भी लड़का बच्चा नहीं । यदि होता तो कभी इस विवाहके झगड़ेमें न पड़ता । कहीं एकान्त गिरिकन्दरा अथवा निर्जन वनमें रहकर परमात्माका ध्यान किया करता और शांति-सुख लाभ करता । परन्तु पूर्वजोंका नाम तो चलना ही चाहिये । इस लिये मुझे पुनः यह संसारकी रचना जबरन करना पड़ी । जब मनुष्य परवश हो

---

* बङ्गलाके " निर्माल्य " के एक लेखका आशयानुवाद ।

जाता है तब उसे ऐसा करना ही पड़ता है। कुछ दिनोंके बाद उनकी वह दूसरी स्त्री भी मर गई। इस समय उनके एक लड़का भी था। परन्तु फिर वे कहने लगे कि लड़केकी चिन्ता करनेवाला कोई दूसरा मनुष्य अवश्य होना चाहिये और यह काम पुरुषोंसे ठीक चल नहीं सकता। अच्छा यदि नौकर रखकर उसे बच्चेका भार सौंप दिया जाय सो भी ठीक नहीं। क्योंकि नौकर तो केवल पैसेके लालचसे यह काम करता है। इस लिये उसे इतना प्रेम—इतनी ममता—नहीं हो सकती, जितनी कि एक घरके मनुष्यको होती है। इस प्रकार तर्क वितर्कद्वारा स्त्रीकी जरूरत बताकर उन्होंने तीसरा विवाह फिर कर लिया।

मेरे नानाजीका कुछ और ही विचार था। वे कहने लगे कि घरमें माता वृद्ध हो गई। उसकी सेवा सुश्रुषा करनेके लिये किसीकी जरूरत थी। इस लिये मुझे यह दूसरा विवाह करना पड़ा। नहीं तो कुछ भी जरूरत न थी। अपनी माताका खयाल करके ही हमारे मातृभक्त नानाजीने यह वृद्ध अवस्थामें फिर विवाह किया है।

मामाजीको माताकी चिन्ता तो न थी। परन्तु वे एक कर्मनिष्ठ गृहस्थ थे। जब उन्होंने अपना दूसरा विवाह किया तब वे कहने लगे कि गृहस्थाश्रमके निर्वाहके लिये धर्मपत्नीकी बड़ी भारी जरूरत पड़ा करती है। इस लिये मैंने यह विवाह किया है। मेरे लिये कहोगे तो मेरी उमर तो हो चुकी। अब पुराने पत्तेकी तरह मेरी दशा हो गई है। इसका कुछ भरोसा नहीं कि वह आज है और कल नहीं। परन्तु हाँ जबतक जीना है तबतक धर्मसाधन तो होना ही चाहिये। क्योंकि शास्त्रोंमें आचारभ्रष्ट पुरुषको

पापी बतलाया है। इस लिये अपने आचारधर्मका पालन करनेके लिये विवाह करना जरूरी था। यही समझ मैंने दूसरा विवाह किया है।

देखिये तो, मनुष्य कितना परार्थी है? स्वार्थकी तो कल्पना भी उसके हृदयको नहीं छूने पाती। कोई कुलकी रक्षाके लिये, कोई अपना गृहस्थधर्म पालन करनेके लिये, कोई अपने लड़केकी सुरक्षाके लिये और कोई अपनी वृद्धा माताकी सेवा शुश्रूषा करनेके लिये एक एक, दो दो, तीन तीन विवाह करते हैं। इस कलियुगमें भी इन महा पुरुषोंका हृदय जब इतना उदार है कि उसमें स्वार्थकी गन्धतक नहीं देखी जाती तब प्राचीन कालके पुरुषोंकी उदारता और निस्स्वार्थताका तो पूछना ही क्या है? जितनी परार्थ बुद्धि इन दूसरे विवाह करनेवालोंमें देखी जाती है उतनी प्रथम विवाह करनेवालोंमें कभी नहीं दीख पड़ेगी।

मेरे काका साहबने जब दूसरा विवाह किया तब वे कहने लगे कि ढाबेमें (होटलमें) भोजन करते २ तबियत ऊब गई। यहाँतक नौबत आ पहुँची कि बीमार पड़ गया। यह देख मुझे वहाँ भोजन करनेसे बड़ी घृणा हो गई। तब मैंने विचार किया कि दूसरा विवाह किये बिना इस दुःखसे छुटकारा नहीं होगा। इस लिये परवश होकर मुझे दूसरा विवाह करना पड़ा।

मेरे बड़े भाई साहबकी माता जीती थी। इस लिये उन्हें भोजन कहीं अन्यत्र न करना पड़ता था। परन्तु फिर भी माताके अधिक आग्रहसे उन्हें अपना दूसरा विवाह करना पड़ा। कुछ ही दिनोंके बाद सास और बहूमें जब न बनने लगी—प्रति दिन एक न एक नया उत्पात होने लगा—तब लाचार होकर बेचारी माताको काशीवास

करनेके लिये चला जाना पड़ा। और जब यह काँटा निकल गया तब वे पतिपत्नी बड़े सुखसे रहने लगे।

इन सब लोगोंके विवाहका कारण तो मैं आप लोगोंको बतला चुका। अब मुझे भी अपने विवाहका कारण कहना चाहिये। कहता हूँ। सुनिये, मैं न कोई बड़ा भारी धर्मात्मा हूँ, न संसारसे उदासीन मनुष्य हूँ और न कोई परोपकारी ही हूँ। पर हाँ अपने सुखकी ओर दृष्टि रखनेवाला एक गरीब आदमी हूँ। इस लिये मेरे विवाह करनेके जितने कारण हैं वे सब स्वार्थताको लिये हुये हैं। संसारमें मनुष्य जातिकी सृष्टि अधिकार चलानेके लिये हुई है। तब मनुष्यको किसी न किसीपर अपना अधिकार—हुकुम—चलाना ही चाहिये। परन्तु मुझ सरीखा एक अदना आदमी किसपर अधिकार चला सकता है? इस लिये कोई ऐसा अपने बसमें अवश्य होना चाहिये जिसपर अपना अधिकार चल सके। अधिकार चलानेको मुझे स्त्री दीख पड़ी। अत एव मैंने यह दूसरा विवाह किया।

बाहर कोई मेरा कितना भी अपमान करे मैं उसका बदला अपने घरमें निकाल सकता हूं। क्योंकि पतिका जैसा स्त्रीपर अधिकार है उसके निर्वाह करनेका मुझे पूर्ण अधिकार है।

मुझमें ज्ञान नहीं तो लोग मेरी हँसी करेंगे और बुद्धि नहीं तो निन्दा करेंगे। परन्तु संसारमें एक ऐसा भी प्राणी है जिसे मनुष्यकी बुद्धि और ज्ञानका भय बना रहता है। बुद्धिमें यद्यपि स्त्री भी कम नहीं होती परन्तु अधिकारके आगे उसकी बुद्धि चल नहीं सकती। जब पति होनेका अधिकार मेरे आधीन है तब उसकी बुद्धि भी मेरे सामने क्या

कर सकेगी ? यह तो मैं ऊपर ही कह चुका हूँ कि मुझे दूसरेके सुखकी कुछ परवा नहीं है ।

मुझमें और और कारणोंसे विवाह करनेवालोंकी तरह योग्यता नहीं है । परन्तु फिर भी इतना तो अवश्य ही मानना पड़ेगा कि होटलमें भोजन करनेकी तकलीफ न सहकर विवाह करनेवालोंसे मैं कहीं उत्तम हूँ । क्योंकि भूख पियास मनुष्य और पशुओंमे समान है । परन्तु महत्त्वाकांक्षा और अधिकार चलानेकी प्रबल इच्छा मनुष्योंमे ही देखी जाती है । तब केवल भोजनके दुःखकी निवृत्तिके लिये विवाह करनेवालोंसे मेरी योग्यता कहीं बढ़कर है ।

दूसरा विवाह करनेमें हमारे बड़े लोगोंके जैसे विचार हैं उनका दिग्दर्शन मैंने करा दिया गया । इस वर्त्तमान पद्धातिके अनुसार विवाह करनेमें हमारी आर्य बहनोंके भी कुछ कारण हैं ? ऐसा प्रश्न प्रायः नहीं उठेगा । परन्तु फिर भी इस विषयमें उनकी क्या इच्छा है? यह बात उनसे पूछनी चाहिये । आशा है कि हमारी बहनें अपने अपने अभिप्रायोंको प्रगट करनेकी कोशिश करेंगी । संभव है उससे पुरुषोंकी प्रवृत्ति भी उनके सन्तुष्ट करनेकी ओर झुके । *

जातिकादास—

जिनदास धरणगांव

---

* मासिक मनोरञ्जनके एक लेखका आशयानुवाद ।

शोकोद्गार।

(भारतके अधिकांश मनुष्य समाजका एक हृदयविदारक दृश्य)

एक महाजन था धनदास, द्रव्य बहुत था उसके पास।
जिसके थे सब नाती पोती, ऐसी तो थी उसकी पोती॥
पाँच नारियाँ परन चुका था, तो भी उसका जी न रुका था।
फिर भी करली एक सगाई, दश हजार कीमत ठहराई॥
घर विवाह करनेका बाना, बनड़ा बन गये बूढ़े नाना।
जो न रहे वर रोने हारी, कुलकी बात जाय तब सारी॥
हाथ पाँवसे अति खंखल था, तनमें इसके जग न बल था।
आँखें बैठी थीं कोटरमें, आँजलिया पर अंजन उनमें॥
हाड़ मांसका काम नहीं था, कहीं दाँतका नाम नहीं था।
पीठी फिर भी खूब लगाई, बीड़ी करसे मसल चबाई॥
सिरके बाल नहीं थे कारे, थे सफेद सब पलक भवाँरे।
कर खिजाब बैरकी नाई, तरुणाई फिर भी दिखलाई॥
बजने लगा भड़ाभड़ बाजा, चढ़े ब्याह करने वर राजा।
चार जनोंने उन्हें उठाया, गली गलीमें खूब घुमाया॥
देख देख पुरके नर नारी, खूब हँसे दे देकर तारी।
वर राजा तोरनपर आये, बेटीने टोडरमल गाये॥
जब देखा वरको कन्याने, लगी रुकके अश्रु बहाने।
बोली मैं न विवाह करूँगी, अपना जीवन यों ही दूँगी॥
मात पिता भाई मतिमान !, किसको देना कन्या दान।
इसका करिए नेक विचार, मत करिए यों अत्याचार॥

पर सुनता था कौन वहाँपर, महा कसाई मिले जहाँपर ।
जबरीसे उसको परना दी, फाँसीपर हा! हा! लटका दी ॥
ऐसा दृश्य देख दुखदाई, कविजनकी आँखें भर आई ।
आगे लिखा नहीं जाता है, हा! हा! हृदय फटा जाता है ॥

जातिका दास—माणिकचंद सेठी

कञ्चन ।

(सामाजिक आख्यायिका)

(१)

सम्बन्ध ।

" हां कहिये आपकी क्या इच्छा है ? "

" मैं क्या कहूँ, मेरी हालत कुछ आपसे छुपी हुई तो है ही नहीं, आप ही समझ लीजिये । "

" फिर भी आपको यह तो बतलाना ही पड़ेगा कि मामला कहाँतक ठीक हो सकता है ? "

" तीन हजार तो आप देते ही हैं । "

" तब आप और क्या चाहते हैं ? "

" मेरा काम इतनेसे कैसे निकलेगा ? "

" आखिर कहेंगे भी कि आप और कितने अधिक चाहते हैं ? "

"इतना तो देना ही होगा इसके सिवा मुझे कुछ लोगोंका कर्ज देना है, वह चुकाना होगा और दोनो औरसे विवाह भी करना पड़ेगा ? "

. . . .

" आप तो मुझे एक ही बारमें चौपट कर देना चाहते हैं। कुछ विचारतो कीजिए कि दूसरेके पीछे भी तो घर बार लगा हुआ है। जब सब कुछ आपहीको दे दिया जायगा तब क्या वह बेचारा भीख माँगेगा ? "

" मैं कब कहता हूँ कि आप मेरे पीछे भीख माँगे। मैं तो आपको अपनी हालत सुना रहा हूँ। मेरे लिये तो यही कन्या सब कुछ है। मेरा दुःख तो इसीके द्वारा दूर होगा। यदि अब भी मेरा कर्ज नहीं चुका तब फिर यह बदनामीका टोकरा क्यों शिरपर उठाऊँगा ? "

" आपकी लड़की है। इस लिये उसपर आपका अधिकार है। आप जो चाहें उसके बदलेमें ले सकते हैं। पर यह तो सोचिये कि जिस घरमें यह लड़की जायगी वहाँ जब खानेहीको न रहेगा तब वह वहाँपर क्या आराम करेगी—क्या सुख भोगेगी ? "

" जिसके पास इतनी गुंजायश नहीं है उसे अपना इरादा ही छोड़ देना चाहिये। "

" आप कहते हैं वह ठीक है। जिसके पास इतना रुपया देनेको न होगा वह क्यों अपने सिरपर ऐसी बलाका बोझ उठावेगा ? मैंने जो ऊपर कहा है वह सर्व साधारणकी स्थितिपरसे कहा है। क्योंकि सब तो एकसे धनी नहीं होते। इस लिये लड़की वालेको भी यह उचित है कि वह अपनी लड़कीके आगामी सुख दुःखका विचार करे। आखिर है तो लड़की उसीकी न ? "

" हाँ साहब ! आप जो कहते हैं वह ठीक है । परन्तु जिसपर दुःख आकर पड़ता है उसका अनुभव भी उसीको होता है । (फटे पुराने कपड़े दिखाकर) देखिये तो मेरी स्थिति कैसी हो रही है ? इसी लिये मुझे यह सब कुछ करना पड़ता है । "

" खैर ! हाँ यह तो कहिये कि आपको कर्ज कितना देना है ? "

" लग भग तीन हजारका । '

" आप तो कुछ ही कर्ज बताते थे ? यह तो एक भारी रकम निकली । "

" जितना कुछ था वह मैंने आपसे कह दिया । इसपर जैसी आपकी मरजी हो कीजिये । (कुछ रुखाईके साथ) आप स्वीकार करें तब तो अच्छा ही है नहीं तो मुझे किसी दूसरेकी तलाश करनी पड़ेगी । "

" मैंने अभी आपसे यह तो नहीं कहा कि आप दूसरेकी तलाश करें । मैं तो अभी आपसे बातचीत ही कर रहा हूं । "

" अच्छी बात है यदि आप इस सम्बन्धको पसन्द करते हैं । फिर मुझे क्या जरूरत है कि मैं किसी औरकी तलाश करूँ । (मन ही मन) भला घरपर आई हुई लक्ष्मीको कौन ठोकर मारेगा ?"

" अस्तु । जो कुछ हो, जैसा आप कहते हैं वह सब मुझे स्वीकार है । पर हाँ एक बात याद रखियेगा कि कहीं किसीके बताये अधिक लोभमें मत फँस जाना । "

" इस बातसे तो आप निश्चिन्त रहिये । आदमीकी जबान एक ही हुआ करती है । "

" आपके कहनेका तो मुझे विश्वास है। आशा तो यही की जाती है। हाँ अब तो कुछ झगड़ा नहीं है ? "

" नहीं। "

" तब सम्बन्ध पक्का हुआ न ? "

" हाँ पक्का ही समझिये। "

" अब भी ही क्या बाकी है ? "

" नहीं साहब ! मुझे स्वीकार है। अब तो सन्तोष हुआ ? "

दिनके बारह बजे होंगे। गरमीके दिन होनेसे प्रायः सब अपने अपने घरोंमें सुखमय शीतल प्रदेशका सेवन कर रहे हैं। इस लिये सारा गांव सूनासा दिखाई पड़ता है। पूनमचन्द इस समयको निराकुल समझकर ही इतनी दूर आये हैं। वे ऐसी गरमीमें आते तो कभी नहीं। परन्तु उन्हें अपने लड़केके विवाहकी बहुत जल्दी है। इसी लिये वे इतनी दौड़ धूप कर रहे हैं। वे लड़केका विवाह जल्दी क्यों करते हैं इसका कारण है। वह आगे चलकर अपने आप खुल जायगा।

आज समय पाकर पूनमचन्दने अपने मतलबकी बात चीतका सिलसिला छेड़ा है और एकान्तमें बैठकर पन्नालालके साथ उसी विषयमें परामर्श कर रहे हैं। पाठक उनकी बात चीतका हाल ऊपर पढ़ ही चुके हैं।

———o———

(२)

परिचय।

पूनमचन्द जयपुरके रहने वाले हैं। आपकी अवस्था लगभग ५९

वर्षकी होगी। आपके एक लड़का है। उसकी अवस्था २० वर्ष-की है। लड़केके सिवा और कोई सन्तान आपके नहीं है। आपकी स्त्री अभी कुछ वर्ष हुये कि मर गई है। कुटुम्बमें आपके एक विधवा भगिनी है। वह प्रायः आपके पास रहती है। उसकी एक लड़की है। वह विवाहिता है। परन्तु अभी वह निरी बालिका है इस लिये अपनी माताके पास ही रहती है।

पूनमचन्दके लड़केका नाम मोतीलाल है। पूनमचन्दने उसके पढ़ानेके लिये साधारण कोशिश की थी, जैसी कि हमारी जातिके धनवान अपनी सन्तानके पढ़ाने लिखानेकी करते हैं। परन्तु फिर भी मोतीलालकी बुद्धि बहुत मन्द थी। इस लिये वह कुछ भी न पढ़ सका। धनवानके लड़के एक तो वैसे ही नहीं पढ़ते और उसपर भी यदि बुद्धि मन्द हो तब फिर कहना ही क्या है? मूर्खता और लक्ष्मीका उचित सम्मिलन हो जाता है।

मोतीलाल मूर्ख तो था ही। परन्तु इसके सिवा उसके स्वभावमें भी साधुपना नहीं था। उसका स्वभाव बहुत चिड़ चिड़ा था। वह अपने नौकर चाकरोंको सदा झिड़कता रहता था। अपराध या दोषके विना ही बेचारोंपर गालियोंकी बोछार पड़ा करती थी। उसमें बालकपनसे कुछ बुरी आदतें भी पड़ गई थीं। बुरी संगतिमें पढ़कर उसने छोटी उमरमें अपना सब शरीर नष्ट कर डाला था। हितशिक्षा उसपर कुछ असर न करती थी। उसकी मूर्त्ति भी भुवनमोहिनी न थी। इतनेपर भी उसपर उसके पिताका अखण्ड प्रेम था। अपनी सन्तानपर जितना माताका गाढ़ प्रेम होता है उतना पिताका नहीं होता। पर पूनमचन्दमें यह बात

न थी। उनका पुत्रपर अपूर्व प्रेम था। यही कारण है कि उसने पुत्रके चाल चलनपर बिलकुल लक्ष न दिया और उसे स्वच्छन्द छोड़ दिया।

सन्तानके सुधार और बिगाड़का भार उसके माता पितापर है। उनकी सावधानीसे सन्तान सुधर कर संसारकी आदर्श हो जाती है और असावधानीसे बिगड़ कर अपने कुलतकको मूलसे नष्ट कर देती है। आज ऐसे अनेक उदाहरण मिल सकते हैं। हमारे देशके धनवानोंकी सन्तान क्यों बिगड़ती है? क्यों निरी मूर्ख रह जाती है? यह सब माता पिताकी इसी असावधानीसे। क्योंकि धन तो उनके पास होता ही है। इस लिये न तो माता पिताको यह खयाल होता है कि सन्तानके बिगड़ जानेसे हमारी सब स्थावर जंगम धन सम्पत्ति नष्ट हो जायगी और इसके सिवा कुलमें कलङ्क लगेगा। और न उनकी सन्तानको यह सुविचार उत्पन्न होता है कि जब हमारी बुरी प्रवृत्तिसे हमारे बाप दादोंका सब धन नष्ट हो जायगा तब हमारी क्या दशा होगी? घर घर भीख माँगनी पड़ेगी, लोग हमें बुरा कहेंगे, हमारा कुल कलङ्कित होगा, हमें कोई कौड़ीके भाव भी न पूछेगा, अपने घरके द्वारपर कोई खड़ातक न रहने देगा, जो हमारी आज सैंकड़ों हजारों खुशामद करते हैं वे भी फिर हमारे पासतक खड़े न होगें और अन्तमें यहाँतक बुरी हालत हो जायगी कि अन्नके एक एक कणके लिये दुःख उठाना पड़ेगा। इसीसे फिर वे निर्लज्ज होकर व्यसनोंमें धन स्वाहा करनेके लिये बद्ध परिकर हो जाते हैं। इन सब बातोंका जो परिणाम निकलता है वह हमारे पाठकोंसे छुपा हुआ नहीं है।

मोतीलालके स्वभाव और बुरी आदतके कारण धन होनेपर भी कोई गृहस्थ अपनी लड़की उसे देना नहीं चाहता था। पूनमचन्दने अपने समान किसी धनीकी लड़कीके साथ मोतीलालका विवाह करनेके लिये बहुत कुछ प्रयत्न किया। परन्तु उन्हें कुछ सफलता प्राप्त न हुई। इसलिये अन्तमें वे निरुपाय होकर कन्या खरीदनेके लिये विवश हुये। भला एक धनीका लड़का बिना विवाहके रह जाय यह उन्हें कब सह्य हो सकता था?

मोतीलाल जैसा जैसा बड़ा होता जाता था वैसे २ ही उसके पिताकी चिन्ता और अधिक २ बढ़ती जाती थी। उस चिन्ताके मिटानेके लिये ही आज उन्हें असमयमें यह दूरकी यात्रा करनी पड़ी है। इसके बाद जो कुछ निश्चित हुआ उसका हाल पहले परिच्छेदमें लिखा जा चुका है।

---

(३)

दरिद्रता।

पन्नालाल पहले तो अच्छे धनी आदमी थे। परन्तु कुछ वर्षोंसे उनपरसे लक्ष्मीकी कृपा उठ गई है। आज वे बिलकुल दरिद्र होकर साधारण स्थितिमें आगये हैं। उनके धन नष्ट होनेका कारण सट्टा है। जबसे उनके पिताकी मृत्यु हुई है तबसे वे कुछ निठल्ले और खुशामदी पुरुषोंकी खोटी चापलूसीसे इस बिना परिश्रमसे धन आनेवाले उद्योगमें लग गये हैं। परन्तु इसके द्वारा बहुत थोड़े मनुष्य भाग्यशाली होते देखे गये हैं। यह नहीं था कि पन्नालालके पास धन न हो, परन्तु तब भी वे अपने लोभको सम्वरण न कर सके। आर-

भमें जैसे कुछ उन्हें लाभ हुआ वैसे ही उनकी तृष्णानें अपना अधिक मुहँ वाना शुरु किया। उन्होंने उसमें अपना पैर ऐसा फैलाया कि धीरे धीरे उन्हें अपनी सब सम्पत्ति स्वाहा कर देनी पड़ी। सट्टे करनेवाले पुरुषोंमें एक और बुरी आदत पड़ जाती है। वह यह है कि जब वे सौ रुपया खोते हैं तब दूसरी बार वे दोसोका सट्टा करते हैं और जब दोसो खोते हैं तब चारसो- का करते हैं। इसी तरह तबतक अधिक २ नम्बर बढ़- ता ही जाता है जबतक कि उनकी सब सम्पत्तिकी इतिश्री न हो जाती है। उस समय उनकी इच्छा बहुत ही प्रबल हो उठती है। वे समझते हैं कि चलो अबकी बार खोया है तो अबकी बार सब कसर निकाल लेंगे। इसी तरह वे बढ़ते २ अपना सर्वस्व नष्ट करके बाबाजी बन जाते हैं।

यही हालत पन्नालालपर बीती। उन्होंने अपना सब धन सट्टेकी भेंट कर दिया। यहाँतक कि भूषण, वर्तन, जगह, जमीन सब कुछ बिक गया परंतु तब भी उनकी वह महालालसा न मिटी। अन्तमें वे अपनी करनीका फल यहाँतक पा चुके कि उनपर लग भग तीन हजार रुपया लोगोंका कर्ज भी हो गया। जब वे सब तरह निरुपाय हो गये तब उन्हें अपना मन मारकर घरमें बैठ जाना पड़ा। इधर लोग अपने कर्जका उनसे तकादा करने लगे। इस समय जो दुःख उनपर बीतता था उसका अनुभव उनके सिवा और कोई नहीं कर सकता। अथवा वे कर सकते हैं जिनपर ऐसी आपत्ति आई हो। पन्नालालके पास कर्जके चुकानेका कुछ भी साधन नहीं था। इस लिये उन्हें और भी अधिक कष्ट होता था। बहुत कुछ तकलीफ उठाने-

के बाद, उनकी दृष्टि अपनी कन्यापर पड़ी। उसे देखते ही उनकी सब चिन्ता चली गई। सन्तप्त हृदय एक ही साथ शीतल हो गया। वर्षोंका दुःख सुखमें परिणत हो गया। वह उनकी दृष्टिमें चक्रवर्त्तीकी निधि प्रतिभासित होने लगी।

बालिका सुन्दरी है। उसका नाम है कञ्चन। अवस्था उसकी लग भग नव वर्षकी हो चुकी है। उसकी बुद्धि तीक्ष्ण है। उसें जो कुछ सिखाया जाता है उसे वह बहुत शीघ्रतासे याद कर लेती है। उसकी धारणाशक्ति भी बहुत अच्छी है। जो बात उसे एकवक्त कह दी जाती है फिर उसे वह कभी नहीं भूलती।

कञ्चनके मकानके पास ही एक ब्राह्मणका मकान था। ब्राह्मणके भी एक लड़की थी। उसकी उमर भी इसीके बराबर थी। ब्राह्मणकन्या सरकारी पाठशालामें पढ़नेके लिये जाया करती थी। उसकी देखा-देखी कञ्चन भी पढ़नेके लिये जाने लगी। बुद्धि तो उसकी तीक्ष्ण थी ही। इस लिये वह छोटी उमरमें ही पढ़ लिख कर हुशियार हो गई। सारे गाँवके लोग उसकी मुक्तकण्ठसे प्रशंसा करने लगे। थी भी वह उसी योग्य। सचमुच यह पन्नालालके घरमें अनमोल निधि थी। परन्तु कहते हुये छाती फटती है कि इस रूपराशि और विद्याकी निधि कञ्चनको-बेचारी सरलहृदया बालिकाको—इसके पिताने स्वार्थके वश होकर कौड़ीके मौल बेच दी—उसे दुःखके अनन्तसागरमें सदाके लिये ढकले दी। इस निर्दयताका कुछ ठिकाना है?

(अपूर्ण.)

आदर्शबालक ।

जैन जातिका सौभाग्य सूर्य कब उदित होगा यह एक गहन प्रश्न है । यद्यपि इसमें कुछ दिनोंसे जागृतिके चिह्न दिखाई पड़ने लगे हैं परन्तु साथ ही उसके अच्छे २ उत्साही युवक उठते जाते हैं जिससे वह जागृति—वह उन्नतिकी आशा—निराशामें परिणत हो जाती है । और चित्तमें एक कठोर आघात पहुँचता है । आज हम जिसका कुछ परिचय अपने पाठकोंको देते हैं वह हमारी जातिका होनहार बालक था । छोटीसी उमरमें उसमें जातीय प्रेम और उत्साह बहुत था । सचमुच यदि इस बालकको हम आदर्शबालक कहें तो कुछ अनुचित न होगा । ऐसे उत्साही बालकोंकी हमारी जातिमें पूर्ण कमी है ।

नाशिक जिलेके अन्तर्गत नायडोंगरी नामका एक छोटासा गाँव है । हमारे आदर्श बालकके पिताका निवास वहींपर था । आपका नाम वकसीरामजी पाटनी था । आपकी स्थिति पहले साधारण थी । परन्तु कुछ दिनोंबाद वह अच्छी हो गई थी । द्रव्य सम्पादनमें आपको बड़े कष्ट उठाना पड़े थे । आपके एक बालक था । परन्तु उसका सुख आपको पूर्ण नहीं मिल सका । ७ वर्षके बालकको छोड़कर आप लोकान्तरित हो गये । आपके पीछे आपकी सम्पत्तिका अधिकार ट्रष्टियोंके हाथमें गया जिससे उसकी सुरक्षा अच्छी हो सकी ।

बालकका नाम भीकचन्द था । उसका हमारा घनिष्ट सम्बन्ध होनेसे उसके पढ़ाने लिखानेका प्रबन्ध नादगाँवमें किया गया था ।

वह संस्कृत और इंग्लिश पढ़ता था। गत भाद्रपद मासमें वह बम्बईकी परीक्षामें उत्तीर्ण हुआ था। भीकचन्द बड़ा सुचरित विनयी और श्रद्धालु था। उसे अतिथिसे बड़ा प्रेम होता था। हम कह सकते हैं कि यदि यह बालक जैन समाजमें कुछ दिनतक और जीता तो इससे जातिको बड़ा लाभ पहुँचता।

भाग्यकी बात है। जब बुरे दिन आते हैं तब कहीं न कहींसे वैसा अनिष्ट भी संघटित हो जाता है। भीकचन्द अपनी प्रिय भगिनीसे मिलनेके लिये नादगाँवसे कन्नड़ गया था। गया तो था बेचारा खुशीके लिये परन्तु वहाँ उसपर ही वज्र आ गिरा। वहाँ किसीके यहाँ विवाह था। विवाहमण्डपमें बहुतसे लोग बैठे हुये थे। अनायास किसी अभागेके हाथसे जलता हुआ लेम्प गिर पड़ा। गिरते ही उसके नीचे बैठे हुये तीन बालकोंके कपड़ोंमें आग लग गई। बहुत कुछ उपाय किया गया। परन्तु फल कुछ भी नहीं निकला। उनमें दो बच्चे तो बिलकुल झुलस गये और उनकी मृत्यु भी हो गई। एक बालक सुरक्षित रह सका, वह जीता है। हमारा आदर्श बालक भी उसी समय कालका ग्रास बना। उसने अपनी उस अन्तिम अवस्थामें जो आदर्शपनेका काम किया है वह जैन जातिके अनुकरण करने योग्य है। १६ वर्षकी उमरमें उसे विद्यासे कितना प्रेम था—वह जातीय संस्थाको कितनी चाहता था—यह पता उसके उस वक्तके दिये हुये दानसे लग सकता है।

२०१) जैनशिक्षाप्रचारकसमिति,

२०१) काशीस्याद्वादमहाविद्यालय,

२०१) जैनपरिक्षालय मोरेना,

२०१) श्रीसरस्वतीभवन आरा,

१०१) श्रीबम्बईप्रान्तिकसभा,

३०२) श्रीमहाराष्ट्रखण्डेलवालसभा,

१०१) सभाके खातेमें,

२०१) जैनपत्रके लिये,

९०) जैनतत्त्वप्रकाशिनीसभा इटावा,

१०१) नादगाँवकी जैनपाठशाला,

२९०) कन्नड़के अनाथोंके लिये,

३९००) नायडोंगरीके मन्दिरकी प्रतिष्टाके लिये,

९१०८)

क्या इस छोटेसे बालककी उदारता देखकर हमारी जातिके धनिकोंकी आँखें खुलेंगीं ? उन्हें अपनी गिरी हुई जातिकी दशाका ज्ञान होगा ? हम परमात्मासे इस होनहार बालककी आत्माको शान्ति मिलनेके लिये प्रार्थना करते हैं और यह आशा करते हैं कि ऐसे आदर्श बालक उत्पन्न होकर हमारी जातिका उपकार करें ।

दुखी—

खुशालचन्द जैन ।

आदर्श कार्य।

प्रातःस्मरणीय पूज्य ऐलक पन्नालालजी महाराजका चतुर्मास इस बार झालरापाटनमें हुआ। कार्तिक शुक्ल १२ को आपका केश-लोंच था। इस अवसरपर दूर २ के लग भग दश हजार जैनियोंका सम्मिलन हुआ था। जातिके निष्कामसेवी ब्रह्मचारी—शीतल-प्रसादजी, बाबा भागीरथजी, बाबू अर्जुनलालजी आदिने भी कृपा की थी। जिनसे व्याख्यानादिका अपूर्व आनन्द रहा।

महाराजका केशलोंच आँखोंके सामने अपूर्व समा बाँध देता है। दर्शकोंके हृदयमें वैराग्यका अनुपम सञ्चार कर देता है। इसमें सन्देह नहीं कि जैमधर्मकी वीरवृत्तिको आज आपने ही सजीवित कर रक्खी है। आपहीकी कृपाका यह फल है जो जैनियोंको इस बातका अभिमान है कि हमारे परमगुरु आज इस दुःसमयमें भी विद्यमान हैं।

आपका केशलोंच बड़े आनन्दके साथ हुआ। उस समयकी धीरताका हृदयद्रावी दृश्य दर्शनीय था। इस अवसरपर विशेष खुसीकी और एक बात हुई। वह यह है कि झालरापाटनके धनिक जैनी भाइयोंने २००००, हजार रुपयेका चन्दाकर अपनी उदारताका पूर्ण परिचय दिया। यह द्रव्य यद्यपि चतुर्विधदानशाला स्थापित करनेके लिये हुआ है, परन्तु उसके लिये इतना धन उपयुक्त न होनेके कारण वर्तमानमें इसके द्वारा एक विद्यालयके खोलनेका निश्चय किया गया है। विद्यालयमें यहाँके और बाहर गाँवके विद्यार्थियोंको लौकिक और पारमार्थिक शिक्षण देनेका प्रबन्ध किया जायगा।

इसके अतिरिक्त यहाँकी पञ्चायतीने अपनी जातिका सुधार होनेके लिये बड़ा ही महत्त्वका काम किया है। जिसकी कि जातिमें सइ समय बड़ी भारी जरूर थी।

(१) जबतक लड़केकी उमर १६ वर्षकी और लड़कीकी १२ वर्षकी न हो—लड़के और लड़कीकी अवस्थामें ४ या ८ वर्षका अन्तर न हो तबतक उनका विवाह न किया जाय।

(२) सन्तानके मौजूद रहते हुये ४० वर्षकी उमरके बाद किसीका विवाह न हो। और यदि सन्तान न हो तो ४९ वर्षतक विवाह किया जा सकता है। परन्तु वह उस हालतमें जब कि शरीर नीरोग और परिपुष्ट हो।

(३) पञ्चायती रिवाजको छोड़कर कोई कन्याका अधिक पैसा न ले। यदि कोई अधिक लेकर अपनी लड़कीका विवाह करे तो वह लेनेवाला, देनेवाला और उनकी पक्ष करनेवाला ये सभी जाति बाहिर किये जावें।

उपस्थित सज्जनोंने भी यह प्रतिज्ञा की है कि हम भी अपने२गाँवमें इन सुधारोंके प्रचारका उपाय करेंगे। हम सारे जैन समाजसे विनीत होकर प्रार्थना करते हैं कि वह अपने उक्त आदर्शकार्यका अनुकरण करे। साथ ही पूज्यपाद ऐलकजी महाराजसे भी प्रार्थना करते हैं कि वे जहाँ पदार्पण करें वहाँ पहले ही इस कन्याविक्रयकी भयंकर प्रथाके बन्द किये जानेकी कोशिश करें। हमारी छो-

टीसी जाति इस कुप्रथासे बहुत तवाह हो चुकी है। आशा है कि महाराज उक्त प्रार्थना पर ध्यान देंगे।

नोट—उक्त उत्तम कार्योंके उपलक्ष्यमें झालरापाटनके भाइयोंका हम हृदयसे अभिनन्दन करते हैं। उन्होंने कन्याविक्रयकी जातिसंहारिणी प्रथाको बन्दकर बडे मत्त्हवका काम किया है। क्या मालवाप्रान्तके भाई इसका अनुकरण करेंगे? जहाँ कि सेठोंके मारे लड़कियोंका बाजार बड़ा गरम रहता है?

जातिकादास—
माणिकचन्द सेठी झालरापाटन।

सम्पादकीय विचार।

१—प्रतिष्ठाओंकी धूम।

जैनसमाज जितना आज प्रतिष्ठा करानेमें अग्रसर है उतना कहीं वह यदि विद्यामन्दरकी प्रतिष्ठा करानेमें अग्रसर हो जाय तो उसे अपनी पतित दशाका सुधार करना बड़ा सहल हो जाय। इसका क्या कारण है जो उसे इस उपयोगी कार्यसे प्रेम नहीं है? क्यों नहीं वह अपनी उन्नति चाहता? हम जब इस विषयकी आलोचना करते हैं तब ज्ञात होता है कि हमारे समाजके अधिकांश धनिक, जिन्हें कि प्रतिष्ठासे बहुत प्रेम है, वे अभिमान अथवा मानकषायके बहुत भूखे हैं। वे समझते हैं कि प्रतिष्ठा करानेसे देशमें हमारी प्रतिष्ठा भी होने लगेगी। परन्तु यह उनका भ्रम है। मनुष्यकी प्रतिष्ठा जितनी समयके अनुसार उपयोगी कार्यके करनेसे होती है उतनी एक अनावश्यक कामसे नहीं हो सकती। मैं प्रतिष्ठा करानेका विरोधी नहीं। परन्तु हाँ जहाँ जरूरत हो वहीं प्रतिष्ठा होनी चाहिये। और जहाँ पहलेहीसे दो दो, चार चार, दश दश,

मन्दिर मौजूद हैं वहाँपर फिर एक नवीन मन्दिर बनवा कर उसमें धनका व्यय करना उतना उपयोगी नहीं हो सकता, जितना समाजके एक जरूरी कार्यमें व्यय करनेसे हो सकता है। हम तो उसे ही सच्चा जैनी और सच्चा धर्मात्मा कहेंगे जो अपनी गिरी जातिकी उन्नतिमें धनका सदुपयोग करते हैं और अपने दुखी, दीन, अनाथ भाइयोंको सहारा देते हैं। इस समय जातिकी बहुत बुरी हालत हो रही है। उसमें बहुतोंको अपना जीवनतक निर्वाह करना कठिन हो रहा है। उनकी ऐसी हालतमें हमारा कर्त्तव्य है कि हम उनके दुःखमें सहानुभूति दिखला कर उन्हें सहायता पहुँचावें। क्योंकि मनुष्यके दुःखमें मनुष्य ही काम आता है। जब हमारा हृदय इतना संकीर्ण है—इतना अनुदार है कि—हम अपने प्यारे जातिके भाइयोंकी—एक माताके सन्तानकी—भी सहायता नहीं करते हैं तब हम दूसरोंका क्या उपकार कर सकते हैं ? जिसका दिल अपने ही कुटुम्बके दुःखोंमे नहीं पसीजता वह औरोंपर क्या दया प्रदर्शित कर सकता है ? आश्चर्य तो इस बातका है कि जैनियोंका दया करना प्रधान धर्म होनेपर भी उनका हृदय दूसरोंके दुःखसे दयार्द्र नहीं होता। चाहे हमारा लिखना अनुचित जान पड़े परन्तु हम तो स्पष्ट कहेंगे कि आजकलके जैनी केवल छोटे २ जीवोंपर ही अधिक दया करते हैं। यदि उनके हाथसे किसी छोटे जीवकी हिंसा हो जाय तो वे उसके लिये बड़ी आलोचना करेंगे। परन्तु आज उनके भाई बहन भूखों मरते हैं, जातिमें हजारों लाखों अनाथ, अपाहिज, दीन, दुखी और विधवाएं हैं, जिनके जीवननिर्वाहका कुछ प्रबन्ध नहीं है; उनके लिये—उनकी आपत्तिपर विचार करनेके

लिये कोई आलोचना नहीं करता—कोई उनका प्रबन्ध कर अपनी सहानुभूति नहीं दिखलाता ? हम यह भी कहेंगे कि दयाको जितना महत्त्व जैनधर्ममें दिया गया है उतना शायद ही कहीं दिया गया हो। परन्तु न जाने फिर क्यों उसके धारकोंमें आज वह दया नहीं दिखाई पड़ती ? इतने लिखनेकी जरूरत हमें इस लिये पड़ी है कि इस वर्ष हमारी जातिमें कई प्रतिष्ठाएं होनेवाली हैं और न वे हमारे लिखनेसे रुक ही सकती हैं। परन्तु हाँ उन प्रतिष्ठाकारकोंसे इतना निवेदन करना उचित समझते हैं कि जहां वे लाख २ दो २ लाख रुपया खर्च करेंगे और साथ ही बेचारे दूर २ देशोंसे आनेवाले प्रायः दीन, दुखी, गरीब लोगोंका लाखों रुपया खर्च करावेंगे उस हालतमें इस दुखित जातिकी अवस्थापर भी वे कुछ ध्यान रक्खें तो अच्छा हो। कहीं ऐसा न हो कि ऐसे महामहोत्सवोंमें भी इस पतितजातिके उद्धारका कुछ उपाय न किया जाय ? आज जातिमें शिक्षाके प्रचारकी बड़ी भारी आवश्यक्ता है। शिक्षाके अभावसे हमें बड़ी २ विपत्तियोंका सामना करना पड़ा है और जबतक जातिमें पूर्ण शिक्षाका प्रचार न होगा तबतक एक न एक विपत्ति हमारे पास खड़ी ही रहेगी। इस लिये जातिके शुभचिन्तकोंका कर्तव्य है कि वे जातिमें शिक्षा-प्रचारके लिये प्रयत्न करें।

प्रतिष्ठा सरीखे बड़े भारी सम्मिलनपर ऐसे जातीय काम बहुत थोड़े प्रयाससे साध्य हो सकते हैं। उस समय यदि हमारे प्रतिष्ठाकारक महाशय इसे भी जरूरी काम समझकर इस पर ध्यान रक्खें तो जातिका बड़ा उपकार हो सकता है। जहाँ लाख लाखें दो

दो लाख रुपया खर्च किया जायगा उसीके साथ यदि कुछ विद्या प्रचारके लिये भी किया जाय तो सोने और सुगन्धकी कहावत ठीक चरितार्थ हो सकेगी। आशा की जाती है कि हमारे जातिके मान्य प्रतिष्ठाकारक प्रतिष्ठाके समयपर जाति सुधारका भी कोई अपूर्व कामकर अपनी प्रतिष्ठाको चिरस्मरणीय बनावेंगे।

२—मालवाप्रान्त और प्रतिष्ठा।

प्रतिष्ठाकरानेमें वैसे तो बुन्देलखण्ड सब प्रान्तोंमें बढ़ा चढ़ा हुआ है। परन्तु पैसे खर्च करनेमें मालवेका ही सबसे ऊँचा नम्बर है। उसमें साधारणसे साधारण प्रतिष्ठा पचास साठ हजारके बिना नहीं हो सकती। कुछ वर्ष पहले इन्दौर और उज्जैनमें प्रतिष्ठाएं हो चुकी हैं। अबकी वर्ष फिर भी मालवेका नम्बर आया है। सुनते हैं कि इस वर्ष मालवे प्रान्तमें ३ प्रतिष्ठाएं होनेवाली हैं। उनमें २ इन्दौरमें और एक सनावदमें। ये प्रतिष्ठाएँ बड़े समारोहके साथ की जायँगी। धन भी खूब खर्च किया जायगा। अच्छी बात है। जातिके धनवानोंका पैसा किसी तरह तो धर्ममार्गमें खर्च होता है।

परन्तु यह जानकर बड़ा दुःख होता है कि हमारे भाई अन्ध-परम्पराके बड़े श्रद्धालु हैं। उन्हें प्रतिष्ठाके सिवा और कोई काम ही ऐसा नहीं दिखाई देता जिसके द्वारा पुण्य संग्रह किया जा सके। प्रतिष्ठा करानेमें पुण्य है। परन्तु मानकषायकी प्रतिष्ठा करानेमें पुण्य नहीं है। और ये प्रतिष्ठाएं केवल मानकषायकी प्रतिष्ठाएं होंगी। यदि ऐसा न होता तो हम कह सकते हैं कि इन्दौर आदिमें कई मन्दिरोंके होते हुये नवीन मन्दिरके निर्माण कराने और उनकी प्रतिष्ठा करानेकी कुछ जरूरत न थी। जातिमें अभी बहुतसी

ऐसी बातोंकी जरूरत है जिनके न होनेसे वह दिनोंदिन नष्ट भृष्ट हो रही है। उसकी प्रतिष्ठापर जब हमारे प्रतिष्ठाकारकोंका ध्यान आकर्पित हो, तब हम कह सकते हैं कि अब सच्ची प्रतिष्ठा की गई। ऐसी प्रतिष्ठा जो करावेंगे वे ही जैन समाजके सच्चे प्रतिष्ठा कारक कहे जा सकेंगे। इन दिखौवा प्रतिष्ठासे सच्ची प्रतिष्ठा होना कोसों दूर है। हम आशा करते हैं कि हमारे प्रतिष्ठाकारक धनिक, पतित समाजका जीर्णोद्धार करके उसकी सच्ची प्रतिष्ठा कराकर सारे संसारके आदर्श प्रतिष्ठाकारक बनेंगे और अपने भूले हुये भाइयों-के सुपथ प्रदर्शक होंगे।

३—कीर्त्तिसम्पादन।

कीर्त्तिसम्पादन मनुष्यमात्रको अवश्य करना चाहिये। इस विष-यमें एक विद्वान्का कथन है कि—

अकीर्त्या तप्यते चेतश्चेतस्तापोऽशुभास्रवः।
तत्तत्प्रसादाय सदा श्रेयसे कीर्त्तिमर्जयेत्॥

अर्थात्—अयशसे चित्तमें संक्लेशता होती है और संक्लेशभावोंसे बुरे कर्मोंका बन्ध होता है। इस लिये चित्तकी प्रसन्नता रहनेके लिये मनुष्यको कीर्त्तिसम्पादन करनी चाहिये। परन्तु इसका यह अर्थ नहीं है कि जैसे हो वैसे ही कीर्त्तिसम्पादन की जाय। यद्यपि बुरे कामोंसे कीर्त्ति नहीं होती, परन्तु कुछ ना समझ लोगोंने यह समझ लिया है कि कीर्त्ति हर एक कृत्य द्वारा सम्पादन की जा सकती है। और फिर इसीसे वे घृणितसे घृणित काम करने लग जाते हैं। वे यह बात जानते हुये कि हमारे कामोंसे जातिको बड़ी हानि पहुँच रही है, उनसे बुराईको छोड़कर कुछ लाभ नहीं

होगा। परन्तु फिर भी उनकी आँख नहीं खुलती। यह सचमुच बड़े आश्चर्यका विषय है। हाँ एक बात है–जिससे उन्हें अपनी बुराई भी भलाई जान पड़ती है। वह क्या? अपना खोटा अभिमान और दुराग्रह। राजा वसु यह अच्छी तरह जानता था कि मैं जो काम करता हूँ वह अन्याय है–अनर्थ है–परन्तु फिर भी उसके खोटे अभिमान और दुराग्रहने उसे सुपथपर न आने दिया। ठीक यही हालत हमारे वर्तमान कीर्त्तिसम्पादन करनेवालोंकी है। वे जानते हैं कि जो काम बुरे हैं उनसे कीर्त्ति कभी नहीं कमाई जा सकती। उनसे हमें, हमारे देशको और हमारी जातिको हानि उठानी पड़ेगी। परन्तु न जाने फिर भी क्यों वे उन्हें ही करते जाते हैं? तब हम क्यों न कहें कि उनका खोटा अभिमान और आग्रह ही इस अनर्थका कारण है। जिन्हें कीर्त्तिकी चाह है, जो अपनेको देशमें प्रतिष्ठित और सर्वमान्य बनाना चाहते हैं उन्हें काम भी देश और जातिकी जरूरतके अनुसार करना चाहिये। तब ही वे अपनी मनःकामना पूर्ण कर सकेंगे और संसार भरमें आदरके पात्र हो सकेंगे।

४–जातिभेद क्या देशकी उन्नतिका बाधक है?

बम्बईमें कुछ दिनोंसे जातिभेद मिटानेके लिये एक आर्यन्ब्रदनहुड् नामकी सभा स्थापित हुई है। इसका अर्थ है **भ्रातृभाववर्द्धकसभा**। इसके प्रधान सञ्चालक हाईकोर्टके जज श्रीयुक्त सर नारायण गणेश चंदावरकर हैं और बहुतसे इसके सभासद हैं। गत नवम्बरकी ता. १२ को उक्त सभाका अधिवेशन हुआ था। उसमें बहुतोंके व्याख्यान हुये थे। उन व्याख्यानोंके द्वारा यह बात बतलाई गई थी कि वेद और उपनिषदोंसे जातिभेदका न होना

सिद्ध होता है । भारतवर्षकी अवनतिका प्रधान कारण यही जातिभेद है । इसकी अब हमें जरूरत नहीं । अब तो सबको एक सूत्रमें बंधकर—जाति आदिके बन्धनको नष्टकर—देशकी उन्नतिमें लग जाना चाहिये । आदि । व्याख्यानके अन्तमें एक भोज्य भी हुआ था । सुनते हैं कि उसमें अस्पर्श शूद्र अन्त्यज भी शामिल थे।

हमारी समझमें यह ठीक नहीं जान पड़ता कि भारतवर्षकी अवनतिका कारण जातिभेद है । उसकी अवनतिके जो जो प्रधान कारण हैं वे पढ़े लिखे पुरुषोंसे कुछ छुपे हुये नहीं हैं । हम कह सकते हैं कि यदि उनके प्रचारका यथेष्ट प्रयत्न किया जाय तो भारतवर्षकी उन्नतिमें कोई भी प्रतिबन्धक नहीं हो सकता ।

इस जातिभेदको मिटानेवाले क्या हमे यह विश्वास दिला सकते हैं कि यदि वे आजसे भारतमें रहनेवाले सात करोड़ मुसल्मान और कई लाख ईसाईके साथ खाने पीने और विवाह शादीका व्यवहार करने लगें तो वे देशके काम आ सकेंगे—उनके द्वारा देशकी उन्नतिमें सहायता मिल सकेगी ? हमे जहांतक विश्वास होता है यह कभी संभव नहीं । मुसल्मान और ईसाई कभी भारतवर्षके न होंगे। फिर उसकी खास उन्नतिके कारणोंपर लक्ष्य न देकर एक अनावश्यकीय कामको हाथमें लेना उचित नहीं जान पड़ता ।

भारतवर्षके अवनत होनेका प्रधान कारण अशिक्षा है । फिर उसीके नष्ट करनेका उपाय क्यों नहीं किया जाता ? हमे विश्वास है कि जब देशके छोटे और बड़े सभी पूर्ण शिक्षित हो जायँगे और ऐसा कोई भी न बचेगा जो अशिक्षित हो, तब इस जातिभेदके रहते

हुये भी सबमें पूर्ण भ्रातृभाव उत्पन्न हुआ दीख पड़ेगा। सबको अपने देशके उन्नत करनेकी सूझेगी। परस्परमें प्रेमभाव और देशकी उन्नतिका कारण ज्ञान है न कि एक साथ भोजन। संसारमें आज अनेक ऐसे प्रदेश भी मिल सकते हैं जिनका भोजन व्यवहार एक होनेपर भी उनमें प्रेमभाव नहीं है। उन्हें जाने दीजिये, अपने देशके लोगोंकी—उनमें भी पढ़े लिखे पुरुषोंकी—हालत देखिये जो भाई भाई हैं, एक पिताकी सन्तान हैं और जिनका जन्महीसे एक साथ भोजन होता चला आया है उनमें भी परस्परमें प्रेम नहीं देखा जाता है। आपको ऐसे बहुतसे उदाहरण मिल सकेंगे जो भाई भाईको पूर्ण शत्रुकी दृष्टिसे देखता है और एकका एक अनिष्ट करनेके लिये तैयार है। तब बतलाइये, हम देशकी अवनतिका कारण इस जातिभेदको कहें या अज्ञानको! विचारशीलोंको कहना पड़ेगा कि हमारा अज्ञान ही इसकी अवनतिका कारण है। फिर क्यों नहीं उसीके हटानेका उपाय किया जाता? जिसके नष्ट हो जानेसे देशका उन्नतिपथ सरल हो सकता है। नहीं जान पड़ता कि पढ़े लिखे विद्वानोंको यह विपरीत बुद्धि क्यों सूझी।

सुना जाता है कि इस सभाके अधिवेशन और एक साथ भोजनकी खुशी जाहिर करनेके लिये कुछ जैनियोंके नेताओंके भी सहानुभूति प्रदर्शक तार और पत्र आये थे। हमें इसपर पूर्ण विश्वास नहीं होता। यदि यह बात सचमुच ही सत्य हो तो जैन समाजको अभीसे सावधान होकर अपने मङ्गलकी चिन्ता करनी चाहिये। क्योंकि इस प्रवाहका सोता कभी ऐसा विकराल रूप धारण करेगा कि स-

भूचे समाजको अपने प्रवाहमें वहा ले जावेगा। आशा है कि समाजके हितचिन्तक इसपर ध्यान देंगे।

इस पंक्तिभोजनमें जो जो शामिल हुये थे उन्हें उनकी जातिवालोंने जातिसे खारिज कर दिये हैं। अब उनमें बहुतसे अपनी भूल स्वीकार करके जातिके पञ्चोंसे क्षमा माँगते हैं और प्रायश्चित लेकर शुद्ध होना चाहते हैं। पहलेहीसे यदि विचार कर काम किया जाता तो क्यों आज इस शुद्धिकी आवश्यक्ता होती। सच है जो विना विचारे काम कर बैठते हैं उन्हें फिर पछताना ही पड़ता है। पञ्चोंका भी इन दुखियोंपर दया करनी चाहिये।

पुस्तक-समालोचन।

स्वाधीनता—डाक्टर जॉन स्टुअर्ट मिलके अंग्रेजी ग्रन्थ लिबर्टीका हिन्दी अनुवाद। अनुवादक हिन्दीके प्रसिद्ध लेखक श्रीयुक्त पण्डित महावीरप्रसादजी द्विवेदी और प्रकाशक हिन्दीग्रन्थरत्नाकरकार्यालय बम्बई। कीमत २) रुपया। मिलनेका पता उक्त कार्यालय।

स्वाधीनताको यदि हिन्दी साहित्यका एक अनूठा आभूषण कहा जाय तो कुछ अनुचित नहीं। द्विवेदीजीने इसे लिखकर हिन्दी साहित्यकी एक बड़ी भारी कमीको पूरी की है। स्वाधीनतामें क्या विषय है? इसके लिखनेकी कोई आवशायक्ता नहीं। वह उसके नामसे ही स्पष्ट है। हाँ इतना कहते हैं कि प्रत्येक मनुष्यको इसे एक वक्त अवश्य पढ़नी चाहिये। उनके पतितसे पतित हृदयको यह उन्नत करके उसे स्वाधीन बनानेका रास्ता बतायेगी और स्वाधीन होनेकी आज हमें बड़ी भारी जरूरत भी है।

अनुवादकी सरलता और उत्तमता के सम्बन्धमें तो कहना ही क्या है? यह शक्ति द्विवेदीजीकी ही लेखनीमें है जो कठिनसे कठिन ग्रन्थको उन्होंने इतना सरल और सुपाठ्य बना दिया। इसके आरंभमें डाक्टर मिलका विस्तृत चरित भी दिया गया है। चरितके लेखक जैनसमाजके प्रसिद्ध लेखक श्रीयुक्त नाथूरामजी प्रेमी हैं। पुस्तकमें डाक्टर मिल और द्विवेदीजीके दो सुन्दर चित्र दिये गये हैं। उनसे पुस्तककी श्री और भी बढ़ गई है। छपाई आदिसे पुस्तक सर्वांग सुन्दर बनी है।

सार्वधर्म और जैनतत्त्वज्ञान और चरित ये दोनों बङ्गभाषाके ट्रेक्ट हमें श्रीयुक्त बा. देवेन्द्रप्रसादजी सेक्रेटरी सार्वधर्मपरिषद्के द्वारा समालोचनार्थ प्राप्त हुये हैं। मूल्य सर्व साधारणके लिये कुछ नहीं रक्खा गया है। बाबू साहबके ही पास मिल सकते हैं।

पहला ट्रेक्ट प्रातःस्मरणीय स्या. वा. पण्डित गोपालदासजीके हिन्दी ट्रेक्टका अनुवाद है। दूसरा जरमनदेशीय डाक्टर जेकोबीके एक अंग्रेजी व्याख्यानका अनुवाद है। इसका हिन्दीसार भी जैनहितैषीमें पहले प्रकाशित हो चुका है। मंत्री महाशयका उद्योग प्रशंसनीय है। आशाकी जाती है कि इस उद्योगसे जैनसमाजका बहुत कुछ हित हो सकेगा। इतनी प्रार्थना हम भी करते हैं कि बाबू साहब अपने इस उद्योगको दिनोंदिन बढ़ाते रहें।

महावीरस्वामी और सनातन जैनधर्म ये दोनों ट्रेक्ट चुन्नीलाल ग्रन्थमालामें प्रकाशित हुये हैं। प्रकाशक पं. पन्नालालजी

बाकलीवाल हैं। इसमें सन्देह नहीं कि हमारी जातिके पहले निष्कामयोगी श्रीयुक्त पण्डित चुन्नीलालजीके स्मरणार्थ आपका उद्योग बहुत प्रशंसनीय है। परन्तु अच्छा होता यदि उनके गौरवके माफिक गौरवान्वित ग्रन्थ प्रकाशनका काम किया जाता। अस्तु। कुछ न होनेसे आज हम इतनेहीमें सन्तोष करते हैं। स्वर्गीय पंडितजीने हमारी जातिका उस समय उपकार किया है—उसे उस वक्त जागृत की है—जब कि अज्ञानका सारी जातिपर एकछत्र राज्य था। इस लिये हमारी जातिके नेताओंको उचित है कि वे पंडितजीके स्मरणार्थ कोई ऐसा काम करें जिससे जातिका उपकार हो और वह उनका स्मारक भी हो जाय। धानिक जैन जातिके लिये यह बड़ी भारी लज्जाकी बात है कि उसने ऐसे परोपकारी पुरुषके लिये अभीतक कुछ भी नहीं किया। उसे अपने इस कृतघ्नताके कलङ्कको दूर करना चाहिये और जबतक कोई भारी काम न हो तबतक ऐसे छोटे २ ट्रेक्टोंके प्रकाशित करनेके लिये पं. पन्नालालजीको सहायता देनी चाहिये। २९) अथवा ३०) रु० में ऐसे छोटे २ ट्रेक्टकी दो हजार कापियां छप सकती हैं। आशा है कि समाज इस जरूरी बातपर अवश्य ध्यान देगा। हम श्रीयुक्त पं. पन्नालालजीको हृदयसे बहुत धन्यवाद देते हैं जो आप निःस्वार्थ होकर जातिकी बहुत कुछ सेवा कर रहे हैं।

द्वितीयवार्षिकरिपोर्ट—यह जैन बोर्डिङ्गहाउस विजनौरका द्वितीयवार्षिकविवरण है। इसके देखनेसे मालूम होता है कि बोर्डिङ्गका कार्य अच्छी तरह चलता है। मंत्री बदरीदासजीको इसके लिये धन्यवाद है। पर बोर्डिङ्गमें विद्यार्थी बहुत थोड़े हैं।

सामाजिक समाचार ।

वम्बईमें रथोत्सव—पौष विदी ३, ता. २६ दिसम्बरसे विदी ९, ता. १ जनवरीतक बड़े समारोहके साथ वम्बईमें रथोत्सव होगा । सुनते हैं कि वम्बईमें ऐसे भारी रथोत्सवका नम्बर दश वर्षमें आया है । एक तो वम्बई वैसे ही दर्शनीय है उसपर भी एक बड़े भारी उत्सवका होना, तब तो उसकी शोभाका पूछना ही क्या है ?

इसी अवसरपर ता. २९।३० को वम्बईप्रान्तिकसभाका वार्षिक अधिवेशन भी होगा । सभापतिका आसन जातिके मान्य श्रीयुक्त बाबू अजितप्रसादजी एम. ए. लखनऊ निवासी अलंकृत करेंगे। उस समय जातिसुधारके लिये कई अच्छे २ कार्यके होनेकी आशा है । जातिके शुभचिन्तक विद्वान्, धनवान, लेखक और व्याख्याता, आदि महानुभावोंसे प्रार्थना की जाती है कि वे इस अवसरपर अवश्य आनेकी कृपाकर जातिके सुधारकी कोशिश करें ।

खण्डेलवालसज्जनका सम्मान—इन्दौरमें गत नवम्बरकी ता.७ को श्रीमान् वाइसरायका शुभागमन हुआ था। उस समय हमारी जातिके सेठ श्रीयुक्त कस्तूरचन्दजी काशलीवालका वहुत सन्मान हुआ । जहाँ २ वाइसरायका तथा महाराजा इंदौरका दरवार लगता था उस समय हमारे सेठ साहबको भी उचित आसन मिलता था । जातिके एक धनिकका राज्य सम्मान देखकर किसे खुशी न होगी ।

विद्यादान—श्रीयुक्त सेट भेराजी वछराजजी काशलीवालने बड़नगरकी जैनपाठशालाके लिये एक हजार रुपया दान दिया है । वैसे तो आप मन्दर आदिमें सदा ही कुछ न कुछ दिया करते हैं । परन्तु

विद्याके लिये यह रकम आपने पहले ही दी है । इस विद्या-प्रेमके लिये आपको धन्यवाद है । आशा करते हैं कि आप आगेके लिये भी अपनी रुचिको इधर अधिक झुकावेंगे । क्योंकि जातिमें इस समय विद्याकी बड़ी भारी जरूरत है ।

नवीन जैनबोर्डिङ्ग—वर्धा (मध्यप्रान्त) में गत ता. २ अक्टूबर-को नवीन जैनबोर्डिङ्गकी स्थापना हो गई । वहांके उत्साही भाइयोंको धन्यवाद है । जातिके लिये शुभ लक्षण हैं ।

दवाका मुफ्तदान—श्रीयुक्त लाला भगवानदासजीने हैजेकी दवा मुफ्त वितीर्ण करनेकी सूचना गतांकमें दी थी । परन्तु अब वे और लिखते हैं कि ज्वरांकुश जिससे नवीन ज्वर, एकान्तरा और तिजारी आदि बहुत जल्दी आराम हो जाते हैं । और विशांकुश जिसे पानीमें मिलाकर लगानेसे वर्र, ततैया और भँवरे आदिका विष और घीके साथ पीनेसे सर्पका विष बहुत जल्दी उतरता है । ये दोनों दवाएं और भी विना मूल्य हम भाइयोंकी सेवामें भेजते हैं । जिन्हें आवश्यक्ता हो वे बड़नगर (मालवा) के पतेपर लिख-कर मँगाले ।

अज्ञानका प्रभाव—बड़नगरसे हमारे पास एक सम्वाददाताका पत्र आया है । उसमें उन्होंने लिखा है कि " आपके सत्यवादीके दूसरे अङ्कमें जो चम्पालालजी कालाका **विद्याशत्रुओंकी धींगाधींगी** शीर्षक लेख छपा है, उसे पढ़कर विरुद्ध दलके लोगोंने बड़ा भारी तूफान मचाया था । यहांतक कि पञ्चायती करके लेखक महाशयको जातिसे बाहर करना चाहा था । परन्तु अपनी आपसकी ही फूटसे

और लेखक महाशयकी हिम्मतसे कर नहीं सके। हाँ कुछ कुछ गोलमाल अभी भी चल रहा है"।

देखिये, पाठक! अज्ञानका कैसा प्रभाव है? स्वयं तो विद्यासे शत्रुता करते हैं और जो उसके प्रचारका उद्योग करते हैं उन्हें जाति बाहर करनेकी कोशिश की जाती है। न जाने इन जातिके दुश्मनोंसे कब इस बेचारी गरीब और दुःखित जातिका पल्ला छूटेगा? क्यों ये अपने हाथोंसे अपने ही पैरोंपर कुल्हाड़ी मारना चाहते हैं? पापी अज्ञान! इस जातिपरसे कुछ तो अपने राज्यकी सीमा कम-कर! अब तो यह बहुत ही दुःख पा चुकी है।

" जैनप्रदीप—उर्दूभाषाके जैनप्रदीपका जन्म श्रीयुक्त बाबू ज्योती-प्रसादजीकी कृपासे होगया। जान पड़ता है कि उसके जन्मसे बहुतोंको एक नई चिन्ता आवेगी। नहीं तो क्यों उसके प्रकाशित होनेमें षड्-यंत्र रचा जाता। जो हो हमें तो खुशी है कि हमारी जातिमें एक स्वतंत्र पत्रका जन्म हुआ।

जातिमें शामिल कर लिये गये—आपसकी शत्रुतासे कुछ ना समझ लोगोंने हुशेनपुरके कुछ जैनियोंपर यह दोष लगाकर कि तुम कबीरपंथकी पुस्तक और भजन आदि पढ़ते हो, उन्हें जातिसे अलग कर दिये थे। परन्तु गत भाद्रपदकी शुक्ल १४ को वे पीछे शामिल कर लिये गये। पीछेसे जान पड़ा कि यह अ-न्याय केवल द्वेषके कारण किया गया था। साधारण बातपर किसीको जातिबाहिर कर देना सचमुच अन्याय है।

सावधान—खतौलीके कुछ मनुष्य इधर उधर गावोंमें जाकर जैनियों ठगते हैं और उनसे रुपया वसूल करते हैं। जब उनसे कारण पूछा जाता है तो कह देते हैं कि मुकद्दमेंमें खर्चेकी जरूरत होनेसे रुपया इकट्ठा किया जाता है। मेरी ना मौजूदगीमें हुसेनपुरसे भी १०) रुपये वे लोग ले गये हैं। तलाश करनेसे जान पड़ा कि यह सब उनकी चालबाजी है। भाइयोंको ऐसे मायावी पुरुषोंसे सावधान रहना चाहिये। गुलशनराय, जगाधरी।

पहाड़गढमें उत्सव—लश्करसे श्रीयुक्त फूलचन्दजी साह लिखते हैं कि मुझे पहाड़गढ निवासी लेखराज मंगलचन्दजीकी जबानी मालूम हुआ है कि वहां पौष शुक्ल ६ ता. १३ जनवरी को रथ निकलेगा और पूजन विधान होगा। इस लिये मैं प्रार्थना करता हूं कि भाइयोंको वहां पधारना चाहिये। यह उत्सव लेखराज मंगलचन्दजीकी ओरसे होगा।

पहाड़गढ़ आनेके लिये गवालियरसे छोटी गाड़ी जाती है। केलारस स्टेशनपर उतरना पड़ता है। वहांसे सात मील बैल-गाड़ीके द्वारा जाना होता है।

सर्व खण्डेलवाल दि० जैन पञ्चोंसे

निवेदन।

श्रीगजपंथा क्षेत्रपर खण्डेलवालपञ्चमहासभाने सम्वत १९६९ भाद्रपद विदी १० के दिन सारोलावालोंका निकाल किया था। परन्तु उन्होंने सभाकी आज्ञाका पालन न कर उसका उल्लंघन किया। इसपर खण्डेलवालजातिने जाहिर किया था कि " सारोलावाले लालचन्दजी किसनचन्दजी तथा रतनचन्दजीके

जाति बिरादरी सम्बन्धी काममें कोई शामिल न हो और न कोई उन्हें अपने काममें शामिल करे"

गत वैसाख महीनेकी विदी ११ को कोकमठाणमें श्रीयुक्त हरलालजी गंगवालकी बहूका नुक्ता था। उसपर सब जगहके पञ्च एकत्रित हुये थे। इस अवसरपर उक्त साहबोंने अपना अपराध स्वीकार कर क्षमा माँगली। इसपर उपस्थित सज्जनोंने विचार कर उनका निकाल करनेके लिये अपनेमेंसे पाँच पञ्च चुने। पञ्चोंने उनसे २५१) रु० दण्ड लेकर रुपयोंकी नीचे लिखे अनुसार व्यवस्था की है। इस फैसलेको सारोलावालोंने भी स्वीकार कर लिया। इस लिये वे दोष मुक्त किये गये।

१००) खण्डेलवालमहासभा,	५) सिद्धक्षेत्र गजपंथा,
५०) स्याद्वादपाठशाला,	५) सम्मेदशिखरजी,
२५) ब्रह्मचर्याश्रम हस्तिनापुर.	५) गायके लिये चारा.
२५) जैनसिद्धान्तभवन आरा.	२५) जिनमन्दिर कोकमठाण.
	१०) जैनसिद्धान्तपाठशाला मोरेना,

पञ्चोंके नाम—छगनीरामजी अजमेरा, कोकमठाण,
छगनीरामजी बोहरा, देवलाणा,
हरलालजी गंगवाल, कोकमठाण,
गंगारामजी पहाड्यां, सड़े,
लालचन्दजी काला, कोपरगाँव,

निवेदक,
खुशालचन्द पहाड्या. स. महामंत्री,

नोट—यह समाचार सभाके मेम्बर छगनीरामजी सवाईरामजी कोपरगाँव-वालोंने प्रकाशित होनेके लिये हमारे पास भेजा है।

विज्ञप्ति ।

जो महाशय निम्न लिखित आदरणीय जैनमहिलाओंके ऐतिहासिक जीवनचरित नवीनशैलीसे लिखकर मेरे पास ३१ जनवरी १९१३ तक भेजनेकी कृपा करेंगे उनमें जिसका लिखा हुआ चरित उत्तम होगा उन्हें प्रति चरित ५) रु. पुरस्कार दिया जायगा ।

१ मेरुदेवी, २ वामादेवी, ३ त्रिशला, ४ ब्राह्मी और सुन्दरा, ५ सीता, ६ द्रौपदी, ७ चेलना, ८ राधिका, ९ मन्दोदरी, १० अंजनासुन्दरी, ११ मनोरमा, १२ मैनासुन्दरी,

प्रार्थी—देवेन्द्रप्रसाद जैन, हिन्दूकॉलेज बोर्डिङ्ग नं. २ काशी.

आवश्यक्ता ।

हमें महाराष्ट्रखण्डेलवालपञ्चमहासभाके लिये एक सुयोग्य उपदेशककी आवश्यक्ता है । जिसका धार्मिक और सामाजिक ज्ञान अच्छा होना चाहिये । वेतन उसकी योग्यताके अनुसार दिया जा सकेगा । नीचे पतेपर पत्र व्यवहार करना चाहिये ।

धन्नालाल काशलीवाल, चन्दाबाड़ी—गिरगांव बम्बई ।

नादगांवकी जैनपाठशालाके लिए एक सुचरित अध्यापककी आवश्यक्ता है । योग्यता विशारदपरीक्षातककी होनी चाहिये । साथमें धार्मिक और लौकिक ज्ञान भी साधारणतः अच्छा हो । पत्र इस पतेसे दीजिये ।

खुशालचन्द पहाड्या, नादगांव (नाशिक)